

बच्चों के विकास में साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण होता है। एकलव्य, भोपाल से निकलने वाली पत्रिका 'चकमक' पिछले 26 वर्षों से बच्चों के लिए अच्छा साहित्य उपलब्ध कराती रही है। हाल ही में चकमक का तीन सौवां अंक विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। यह समीक्षा उस अंक के बहाने बाल साहित्य में चकमक के योगदान की परख करती है।

तीन सौ पार चकमक

पल्लव

हम साठ साल बाद भी 'नागरिक समाज' नहीं बन पाए। हमारी मेट्रो ट्रेन में जगह-जगह जुर्माने की चेतावनियों के बावजूद हमारे लोग थूक जाते हैं या गंदगी कर जाते हैं। मौका मिलते ही हम धक्का मारकर आगे बढ़ने लगते हैं। हमारे बच्चे स्कूलों में प्रतिदिन प्रतिज्ञा करने पर भी 'राष्ट्र' के लिए समर्पित नहीं होते। आखिर क्यों? जबकि इसे कौन झुठला सकता है कि बीते हजार सालों में जितने चिन्तक, विचारक और उपदेशक इस भूमि पर हुए भला और कहीं हुए?

फिर पंचतंत्र और तमाम कथाओं/किस्सों और कविताओं का क्या कीजिए जो 'सीख' देती हैं। मतलब साफ है कि मनुष्य उपदेश से नहीं बदलता। साहित्य से भी बदलाव की अपेक्षा ज्यादाती ही है। बच्चों का साहित्य इसी ज्यादाती का मारा है और हिन्दी में विश्व स्तरीय बाल साहित्य नहीं होने का कारण भी यही है। तो क्या किया जाए? बच्चे जब वैसे ही रहने हैं तो देखने दीजिए उन्हें छोटा भीम, रिची रिच, हगीमारू, नोबिता को। नहीं... क्या यह ठीक नहीं होगा कि उन्हें सीख देने की बजाय उन्हें जवाबदेही की प्रक्रिया से जोड़ा जाए, उन्हें स्वयं विचार करने के लिए तैयार किया जाए, उनकी संवेदना का दायरा विकसित होने की कोशिश की जाए और बेशक बाल साहित्य की पहली शर्त सीख या शिक्षा नहीं भागीदारी हो। मनोरंजन, ज्ञान और दुनिया को देखने-समझने की तमाम प्रक्रियाओं में भागीदारी। अपने पूरे बालकोचित उत्साह और मौज के साथ।

ये बातें मैं चकमक के संदर्भ में कह रहा हूँ। भोपाल से प्रकाशित होने वाली बाल विज्ञान पत्रिका 'चकमक' के छब्बीस वर्ष पूरे हुए और अभी-अभी तीन सौ वां अंक प्रकाशित हुआ है। ढाई सौ पृष्ठों के इस विशाल अंक में बीते छब्बीस वर्षों की श्रेष्ठ रचनाओं का समृद्ध चयन है तो कुछ नई रचनाएं भी हैं। असल में बाल

साहित्य को लेकर हिन्दी में दो तरह की स्थितियां हैं -- पहली बताती है कि पराग और नंदन का जमाना चला गया। दूसरी स्थिति में भी पहली बात को दूसरे ढंग से कहा जाता है कि हिन्दी में बाल साहित्य संभव नहीं। चकमक इन स्थापनाओं को निर्मूल करती है। जिन पाठकों ने चकमक कभी न भी पढ़ा-देखा हो तो यह अंक बताने के लिए पर्याप्त है कि बाल साहित्य कैसा होना चाहिए। संपादक सुशील शुक्ल ने प्रारम्भ में लिखा है, “बच्चे इसे समझ न पाएंगे जैसे जुमलों के छन्दों से निधारकर उबाऊ, नीरस, सतही साहित्य बच्चों को कई वर्षों तक खास तौर पर हिन्दी जगत में पेश होता रहा। बच्चे हमारी दुनिया की तमाम मुश्किलों में शामिल होते रहे। होना ही था। आखिर हम एक ही दुनिया तो साझा कर रहे हैं। बच्चे जिन्दगी की तमाम गुत्थियों को सुलझाने के लिए जूझते रहे। पर उनकी जूझ को कम करने वाले अर्थ के लिए उन तक नहीं पहुंचे। बड़े अकसर उन्हें एक अलग-थलग पड़ी नकली दुनिया तक सीमित रखने में लगे रहे। और बच्चों का साहित्य चालाक लोमड़ी, सुंदरवन, परियों, राजाओं के किस्सों से लबालब हो उठा।”

सुशील के इस आकलन से असहमत होना कठिन है। जिसे ‘मुख्यधारा’ का बाल साहित्य कहा जाता है उन पत्रिकाओं में या तो सीख देने वाला साहित्य रचा जाता है, आदर्श प्रतिमाओं के निर्माण पर जोर होता है या फिर परियों-भूतों-राजाओं के मित्र संसार में भटकने के अभ्यास वर्ग की खुराक। चकमक ने इन अतिचारों को तोड़ा है। शीर्षक के साथ भले लगा हो बाल विज्ञान पत्रिका, लेकिन इन छब्बीस सालों की यात्रा में पाठकों को कला, साहित्य, भाषा पर सामग्री के साथ जो मिला वह

था आसपास का भरा-पूरा संसार अपनी तमाम विविधताओं के साथ। हम देखते-जानते हैं कि आमतौर पर हिन्दी के बड़े लेखक बाल साहित्य नहीं लिखते, चकमक ने इसे भी चुनौती की तरह लिया और श्रीलाल शुक्ल, केदारनाथ सिंह, विनोद कुमार शुक्ल, अरुण कमल, राजेश जोशी, नरेश सक्सेना, रमेश उपाध्याय, स्वयं

प्रकाश, मृणाल पांडे, प्रियंवद, विष्णु नागर, अलका सरावगी जैसे लेखकों से अपने लिए साग्रह लिखवाया, जिसकी झलक प्रस्तुत अंक में देखी जा सकती है।

चकमक की जिस एक और विशेषता को रेखांकित किया जाना चाहिए वह है बाल पाठकों को कला-साहित्य में भागीदार बनाना। कोई आश्चर्य नहीं कि चकमक के पच्चीस-तीस प्रतिशत पन्ने आम तौर पर बच्चों के बनाए चित्रों, कविताओं, कहानियों या किसी भी सामग्री से भरे होते हैं। यह भागीदारी चित्र बनाओ प्रतियोगिता जैसे मुहावरों से नहीं आती अपितु बच्चा पढ़-देखकर स्वयं प्रेरित हो, इसकी गुंजाइश बनाई जाती है। बच्चों के लिए माने गए वर्जित क्षेत्रों यथा सिनेमा पर भी ऐसी सूचनाप्रद और रुचिवर्धक सामग्री इसके अंकों में देखी जा सकती है। चकमक के एक पुराने अंक में एक छोटी लड़की पर कहानी या संस्मरण मैंने देखा था, ‘पापा मुझे जोर से सूसू आ रही है’ और वहां हाथ से बनाया एक सुन्दर और कल्पनाशील चित्र भी था, आखिर क्यों नहीं? क्यों हम शरीर से जुड़ी बातों को छिपाते हैं और बच्चों के भीतर अज्ञात कौतुहल या भय पैदा होने देते हैं?

इस अंक में पूर्व प्रकाशित सामग्री से चयन में प्रेमचन्द की ठाकुर का कुआं जैसी कालजयी कहानी है तो केदार नाथ सिंह की कविता ‘बिना नाम की नदी’। फर्नान्दो पेस्सोआ की कविता ‘अगर ईश्वर पेड़ और फूल है’ के साथ प्रभात की कहानी ‘ऊंट का फूल’ भी पढ़ी जाने लायक रचनाएं हैं। असल में यहां रचनाओं के पीछे छिपी दृष्टि की बात होनी चाहिए। जो समझते हैं कि परी-भूत-राजा जैसी रचनाओं में दृष्टि नहीं होती तो यह गलत है, वहां दृष्टि साफ है यथार्थ से दूर ले जाकर नकली

खुशफहमी पैदा करना, क्योंकि बच्चे कोमल मन वाले हैं उन्हें दुनिया के जंजालों से क्या लेना-देना? हम जानते हैं ऐसा नहीं होता। बच्चे कोमल मन के साथ अपनी अपूर्व संवेदनशीलता के कारण इस दुनिया के तमाम छल-छद्मों को देख-जान पाने में समर्थ हैं और बेहतर है कि वे इनसे भागने के बजाय इन्हें ठीक से देखें-समझें। हां, उन्हें कोई समाजशास्त्र नहीं पढ़ना है, रचना रचना ही रहे। ए. के. रामानुजन के अंग्रेजी अनुवाद से रामायण पर आधारित एक अत्यंत मार्मिक



और सुन्दर लोककथा 'कितनी रामायणों?' यहां पढ़ी जा सकती है। प्रसिद्ध चित्रों के प्रकाशन के साथ उन पर व्याख्यापरक आलेख मसलन गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का 'मां और बच्चा' पढ़ना वाकई दुर्लभ अनुभव है और यह काम अशोक भौमिक जैसे चित्रकार-कथाकार ने किया है। प्रसिद्ध चित्रकार दिलीप चिंचालकर का आलेख 'बचपन, चित्रकार पिता के साथ' इस अंक की उपलब्धि है जिसमें वे अपने यशस्वी चित्रकार पिता विष्णु चिंचालकर के बारे में बताते चलते हैं। यहां पिता-पुत्र का संबंध, चित्रकारी और भारतीय पितृसत्तात्मक समाज के बारे में सैद्धांतिक बहसों के बजाय बातें इस सहजता से आई हैं कि यह एक यादगार कृति बन गई है।

चकमक कुछ बढ़िया-जरूरी किताबों के अंश भी अपने पाठकों के लिए देता है, यहां जिस अंश को दिया है वह ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' का है। छोटे से अंश के साथ दी गई टिप्पणी देखिए, "हो सकता है कि ऐसी घटनाएं तुम्हारे साथ या तुम्हारी कक्षा, शाला, गांव या मोहल्ले में भी घटती हों। कई बार हम खुद भी ऐसी घटनाओं में शामिल हो जाते हैं, हंसते हैं, हंसी उड़ाते हैं। उस समय यह अहसास नहीं होता कि जिस पर बीत रही है, उस पर क्या असर होगा?" यह है भागीदारी। कुछ मित्र कहते हैं कि बालकों के कोमल मन पर छुआछूत-भेदभाव की बातें बुरा असर डालती हैं इसीलिए उनको इनसे दूर रखना चाहिए, लेकिन क्या वाकई वे इस जैसी घटनाओं से अनभिज्ञ हैं? गंदगी को न देखने से गंदगी खत्म नहीं हो जाती। गंदगी को खत्म करने के लिए गंदगी से जूझना पड़ता है।

स्वयं प्रकाश ने चकमक में एक शृंखला लिखी थी 'प्यारे भाई रामसहाय', इसी शीर्षक से हर कहानी शुरू होती थी और बचपन का कोई न कोई किस्सा सुनाती थी। इस अंक में ऐसी एक कहानी को लिया है जिसमें अमृतलाल नाम के एक लड़के के फुटबाल खेलने की कहानी है। कहानी इस रोचकता से कही गई कि खेल विषय

पर होने पर भी बात अपनी सीमाओं को तोड़कर बेहद व्यापक हो गई है। एक और ऐसी बात गैर-जानकारी की है जैसे हम यदि किसी समुदाय विशेष के बारे में जानते ही नहीं तो उस समुदाय में हमारी दिलचस्पी भला कैसे होगी? और कैसे हम उस समुदाय के निकट ही हो सकते हैं? यह बात व्यापक तौर पर देखी जा सकती है। गणित, जीव विज्ञान, भौतिक विज्ञान और वनस्पति विज्ञान से जुड़े रोचक और महत्त्वपूर्ण सवालों पर चकमक में हमेशा कुछ न कुछ सामग्री होती

है जो बच्चों के भीतर इन विषयों के प्रति भय को खत्म कर इनमें दिलचस्पी जगाती है। यहां चींटियों जैसे क्षुद्र जीव पर आए दो रोचक लेखों को इस नजरिए से देखें तो हमारे पर्यावरण के प्रति प्रेम का यह महत्त्वपूर्ण पाठ हो जाता है। बानरेन्द्र की प्रकाशित एक कविता की पंक्तियों से यह चर्चा समाप्त की जा सकती है -

चला चांद से चंदू बनिया
पहने अचकन और सुथनिया
बनकर पूरा छैल चिकनिया
बोने को धरती पर धनिया।

यहां चकमक के साफ-सुथरे मुद्रण और अशुद्धियों से रहित भाषा की प्रशंसा जरूरी है। चित्रों पर जोर वाजिब है और ये चित्र भी अतनु राय, दिलीप चिंचालकर जैसे कलाकारों के बनाए हैं। इस अंक में यदि सांप्रदायिक-सद्भाव पर कोई प्रकाशित रचना का चयन होता और प्रभात की बेहतरीन बाल कविताओं में से कोई होती तो और भला लगता। बहरहाल जो है उस पर इतराया जा सकता है। चिंता की बात यही है कि भारत के करोड़ों बच्चों तक चकमक पहुंचे कैसे?

भारत की महानता के किस्से सुनाने से भारत महान नहीं हो जाता। भारत को महान बनाने के लिए हम सबको अपने-अपने हिस्से का काम पूरी ईमानदारी और समर्पण से करना होगा। चकमक इस दिशा में जाने की तैयारी है... आइए इस रास्ते पर अपने बच्चों के साथ चलें। ◆